



## प्रतिरोध के स्वर बुलंद करती दलित लेखिकाओं की आत्मकथाएँ

डॉ.राजेश्वरी

माल्या अदिति इंटरनेशनल स्कूल

बंगलूरु, कर्नाटक, भारत

### शोध संक्षेप

पिछले कुछ दशकों में आत्मकथा एक विशिष्ट साहित्य विधा बनकर उभरी है। हिन्दी में ओमप्रकाश वाल्मिकी की 'जूठन' और मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे' के बाद कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' तथा सुशीला टाकभौरें की 'शिकंजे का दर्द' से दलित आत्मकथाओं ने हिन्दी साहित्य की इस विधा में अपनी जड़ें जमा ली हैं। दलित पुरुष मात्र जातिभेद का शिकार हैं, जबकि दलित स्त्रियाँ जातिभेद के साथ-साथ लिंगभेद की दोहरी चक्की में पिसती आई हैं। इस त्रासदी को आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत करना एक दलित स्त्री के लिए निश्चित रूप से अदम्य साहस का कार्य है। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं परिस्थितियों पर विचार किया गया है।

### कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप'

सन 1999 में प्रकाशित 'दोहरा अभिशाप' एक दलित स्त्री कार्यकर्ता कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा है, जो अपने वैवाहिक जीवन के चार दशक निष्क्रिय रहीं और फिर अपने पति से अलग होकर बड़ी उम्र में सक्रिय हुईं। वे एक ऐसे आदमी से विवाहित थीं जो स्वतंत्रता सेनानी था तथा भारत सरकार में उच्च पद पर आसीन होते हुए भी अपनी पत्नी को अनेक प्रकार से प्रताड़ित करता है। चार दशक की पीड़ा सहने के बाद वे उससे अलग रहने का फैसला लेती हैं। अपने पुत्र के साथ चेन्नई में रहते हुए लेखिका ने अपने अनुभवों को हिन्दी में कलमबद्ध करने का निर्णय लिया।

बाल्यावस्था में अनेक अवसरों पर उन्हें जातिभेद का अहसास कराया जाता था। चौथी कक्षा की शिक्षिका उनसे बहुत अतिरिक्त काम करवाती थी, कभी होटल से चाय मँगाती, कभी कुछ और सामान मँगवाती तो कभी जाँचने की कॉपियों का

बंडल घर पहुँचाने को कहती। एक बार सहपाठी ने किताब चुराने का इलज़ाम उनपर लगाया, इस बात का उनके मन पर गहरा असर हुआ था। बचपन में अन्य लड़कियों की देखा-देखी वे भी मंदिर जाकर प्रसाद खाती और विभूति लेकर किताबों में रखती। धीरे-धीरे उनका विश्वास भगवान से उठ गया और प्रतिरोध के स्वरूप वे नास्तिक हो गईं।

एक बार पाँचवी कक्षा में पढ़ते समय, तंगहाली के कारण उनके माता-पिता फ़ीस देने में असमर्थ थे। 'बाबा ने हेड मिस्ट्रेस को आश्वासन दिया और उनके चरणों के पास अपना सिर झुकाया दूर से, क्योंकि वे अछूत थे, स्पर्श नहीं कर सकते थे। बाबा का चेहरा कितना मायूस लग रहा था उस वक्त! मेरी आँखें भर आई थीं। अब भी इस बात की याद आते ही बहुत व्यथित हो जाती हूँ। अपमान महसूस करती हूँ। जाति-पाँति बनाने वालों का मुँह नोचने का मन करता है। अपमान का बदला लेने का मन करता है।"<sup>1</sup>

सवर्ण लोगों के अनुदार व्यवहार के कारण उनके मन में हीनता की ग्रंथी ने जन्म ले लिया था अतः वे खेलों में अच्छी होने के बावजूद उनमें भाग लेने से डरती थीं। एक बार हरिजन सेवक संघ की ओर से अस्पृश्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने का नोटिस आया। कौशल्या जी ने भी फार्म भर दिया। पूरा दिन गरमी में भूखे-प्यासे प्रतीक्षा के बाद बात अगले दिन पर टाल दी। अगले दिन उनके रवैये को देखकर उन्हें बहुत बुरा लगा और उन्होंने पढ़ाई के लिए फिर कभी हरिजन सेवक संघ की मदद नहीं ली।<sup>2</sup>

एक बार उनके मोहल्ले की ईसाई औरत ने उन्हें बीसी (चिटफंड) डालने की सलाह दी। कौशल्या बैसंत्री ने बीसी डाली। उसमें अधिकतर ब्राह्मण औरतें थीं, एक मराठा और एक कायस्थ थी। मराठा स्त्री द्वारा उनकी जाति का पता लगने पर बाकी औरतों ने ऐतराज किया तो उन्हें बहुत गुस्सा आया और बकाया पैसों के साथ एक पत्र भिजवाया जिससे उनके प्रतिरोध के स्वरो का अंदाज़ा लगाया जा सकता है- “आपने मुझसे मेरी जाति नहीं पूछी। क्या मैं अपनी जाति का पोस्टर पीठ पर चिपका कर रखूँ ? आप सभ्य नहीं लगतीं। सभ्य आदमी जाति-पाँति का विचार अपने मन में नहीं रखते और जाति-पाँति मानने वालों से मैं अपना संपर्क नहीं रखती। मुझे पहले पता होता कि आप जाति-पाँति मानती हैं तो मैं स्वयं आपके चिटफंड में नहीं आती। आपकी जाति के लोगों ने हमारे बाप-दादा और हमारी जाति के लोगों को सदियों से सताया-पीने को पानी नहीं, पढ़ाई नहीं, संपत्ति नहीं, काम करने की मनाही। गाँव के बाहर चीथड़ों में रहने को मजबूर किया। और भी अमानुष अत्याचार किए। फिर भी हमने यह सब सहकर अपने पाँव पर खड़े रहकर उन्नति की और आपसे आगे बढ़कर

दिखाया है। अब आपसे दबकर नहीं रहेंगे। फिर मैं आपसे क्यों डरूँ?”<sup>3</sup>

उनका विवाह देवेन्द्र बैसंत्री से हुआ। वह बहुत ही आत्मकेन्द्रित तथा शैतान किस्म का व्यक्ति था। शारीरिक और मानसिक रूप से जितनी प्रताड़ना कौशल्या जी ने सहन की, उसकी कल्पना करना भी कठिन है। चार दशकों तक अपने पति का क्रूर व्यवहार झेलने के बाद लेखिका आखिर उससे अलग रहने का निर्णय लेती है। “बहुत अत्याचार होने पर मैंने कोर्ट में देवेन्द्र कुमार पर केस दायर किया। आज दस वर्ष से केस कोर्ट में अटका पड़ा है। मुझे हर माह 500 रुपए मेंटेनेंस के मिलते हैं। देवेन्द्र कुमार इसे देने में भी देर लगाता है, चार-चार महीने नहीं भेजता।”<sup>4</sup>

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा ‘शिकंजे का दर्द’

मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के बानापुरा गाँव में एक दलित परिवार में सुशीला का जन्म हुआ। इनका परिवार पिछड़ों से भी पिछड़ा था। इस गाँव में बहुत छुआछूत थी और ऊँच-नीच, जातिभेद की भावना सब तरफ व्याप्त थी। अछूत भंगी हरिजनों के घर- गाँव के बाहर रहते थे, हिन्दू महाजनों की बस्ती से दूर, कच्चे खपरैल घर। उस समय इनके दलित समाज में लड़के-लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने का रिवाज नहीं था। उनकी सोच थी- “बच्चों को पढ़ाकर का होयगो ? अपनी जात तो वही रहेगी। काम, रोजगार तो अपनी जात के ही करनो पड़ेगो फिर क्यों बच्चों को परेशान करें?”<sup>5</sup> सौभाग्य से सुशीला के माता-पिता शिक्षा के प्रति जागरूक थे अतः उन्होंने वर्गभेद और जातिभेद की व्याप्त कट्टरता के बावजूद उन्हें यथासंभव पढ़ाया।

लेखिका ने अपनी लेखनी के माध्यम से अनेक घटनाओं द्वारा अपना प्रतिरोध ज़ाहिर किया है। स्कूल में शिक्षक और विद्यार्थी सभी छुआछूत का पालन करते थे। कक्षा में सबसे पीछे टाट-पट्टी पर नहीं, फर्श पर बैठना पड़ता था। दलित छात्र अपने हाथ से पानी भी लेकर नहीं पी सकते थे। इन बातों का उनपर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने स्वयं को हिन्दू मानने से इनकार किया है। वे अपने समाज के लोगों के लिए प्रयोग किए जाने वाले शब्द 'वाल्मीकि' का भी विरोध करते हुए लिखती हैं- "1920 के आसपास के कालखंड में अमीचन्द शर्मा जैसे हिन्दू धर्म प्रचारक ने 'वाल्मीकि प्रकाश' पुस्तक लिखकर हमारे लोगों में यह प्रचार किया कि हम हिन्दू हैं। 'वाल्मीकि' हमारे गुरु हैं। इस तरह हमारी जाति का नामकरण 'वाल्मीकि' किया गया।" सुशीला जी भंगी-समाज की मुक्ति वाल्मीकि, गाँधी से जुड़ने में नहीं बल्कि डॉ. अंबेडकर के दिखाए मार्ग का अनुकरण करने में देखती हैं- "मैं इस बात को अति आवश्यक मानती हूँ कि दलित होने की पीड़ा से मुक्ति एवं हरिजन कहे जाने के अपमान की मुक्ति की बात से पहले 'वाल्मीकि' कहे जाने से मुक्ति की बात होनी चाहिए। वाल्मीकि होने का हिन्दूवाद हमें अंबेडकरवाद से जुड़ने नहीं देता।"<sup>6</sup>

नागपुर में घटित गोवारी हत्याकांड का संदर्भ लेते हुए सुशीला टाकभौरे अपने समाज के यथास्थितिवाद की तीव्र शब्दों में भर्त्सना करती हैं- 'हमारे जाति समुदाय के लोग अपने पैतृक रोज़गार से मुक्ति पाने और सम्मान का जीवन जीने के लिए कठिन लड़ाई नहीं लड़ते। वे विद्रोह का बिगुल बजाकर अपनी जान जोखिम में नहीं डालते। इसलिए जिस हाल में हैं, उसी में खुश

रहते हैं, मगर इससे सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सकता।"<sup>7</sup>

बाल्यावस्था की चर्चा करते हुए उन्हें माँ, नानी और बहन के साथ रामलीला, भजन और कव्वाली सुनने जाने की बात याद है। गाँव के ब्राह्मण-पंडित नानी-माँ को दीन-हीन जीवन जीने के आदर्श और सदाचार का उपदेश देते रहते थे। हिन्दू धर्म की अनुदारता पर लेखिका का आक्रोश, जातीय अपमान की गहन अनुभूति से शब्दों में फूट पड़ा है- "हिन्दू धर्म में नदी, पहाड़, पेड़-पौधे, जानवर सभी को महत्व और सम्मान दिया जाता है, लेकिन अछूत मनुष्य को कोई स्थान नहीं, कोई सम्मान नहीं। हिन्दू धर्म के आडम्बर में मिट्टी से बने पुतलों को भी भगवान की तरह पूजा जाता है मगर इन्सान को इन्सान नहीं मानते। यह हिन्दू धर्म की विडम्बना है, हिन्दू संस्कृति का कलंक है। लोग इसे ही धर्म कहते हैं।"<sup>8</sup>

विवाह के पश्चात सुशीला ने अपने पति और ननद की बहुत प्रताड़ना सही। अधिकार लड़कर लेना होता है, अत्याचार सहने वाला भी अपराधी होता है, यह बात लेखिका बहुत देर से समझ पाई। जब नारी निडर होकर अपना रोष प्रकट करती है तो पुरुष के होश ठिकाने लग जाते हैं। एक बार सुशीला टाकभौरे ने 'वैष्णव अपार्टमेंट' का फ़्लैट बुक किया, जिसके लिए उन्होंने एक लाख रुपए का प्रबंध किया। रजिस्ट्री होने से पहले पति अक्सर कहते थे-"मैं अपना यह फ़्लैट चिट्ठू (बेटा) के नाम कर दूँगा। तू उसके दरवाज़े पर, उसकी मेहरबानी की भीख माँगी हुई बैठी रहना, रिरियाती हुई देखती रहना। इस बात का उन्हें बहुत बुरा लगा और उन्होंने दृढ़ निश्चय किया- "फ़्लैट सिर्फ़ मेरे नाम से खरीदेंगे, तभी मैं अपना रुपया दूँगी। नहीं तो एक पैसा नहीं दूँगी।

चाहे फ़्लैट खरीदो, चाहे मत खरीदो।” तब फ़्लैट उनके नाम से ही खरीदा गया। शुरू के दिनों में उनका पति अपनी पत्नी की सारी कमाई पति झटक लेता था। एक बार खर्च को लेकर जवाब-तलब करने पर पति ने चप्पल उठाई तो वही चप्पल सुशीला ने भी उठा ली। पत्नी का यह रौद्र रूप देखकर पति सन्न रह गया और उस दिन से उसका व्यवहार परिवर्तित हो गया। आत्मविश्वास प्राप्त कर सुशीला जी ने पति की सत्ता को कमजोर कर दिया और वे अपना वेतन और पासबुक खुद रखने लगी। पति की दासता से मुक्त होकर धीरे-धीरे वे अपने निर्णय स्वयं लेने लगीं।<sup>9</sup>

एक बार कॉलेज में सवर्ण सुपरवाइज़र हरदम उनपर झूठा आरोप लगाते हैं कि वे लेट आती हैं तथा क्लास नहीं लेती हैं। रोज-रोज की शिकायत से तंग आकर एक दिन सुशीला जी ने प्रतिरोध के स्वर बुलंद करते हुए उनको जोरदार फटकार लगाई- “आप यहाँ के मालिक नहीं हो। आप भी यहाँ नौकरी करते हो। आप से ऊपर, आपसे बड़े और लोग भी हैं। मैं उनके पास जाकर आपकी शिकायत करूँगी कि आप मेरे साथ भेदभाव और जातिभेद करते हो।” सुपरवाइज़र साहब इस धमकी से सिकुड़ गए।<sup>10</sup>

अपनी अस्मिता की पहचान होने पर और आत्मविश्वास प्राप्त करते ही सुशीला टाकभौरे को अपनी राह मिल गई। रूढ़ियों, परंपराओं से टकराने का साहस अपने अंदर पैदा कर वे लेखन, दलित-आंदोलन और नारी-जागरण की गतिविधियों से जुड़कर सक्रिय हो उठीं। दूर-दूर के स्थानों की यात्रा करना उनके लिए आसान हो गया। दलित-साहित्य सम्मेलनों, चर्चा-सत्रों और परिसंवादों में वे भाग लेने लगीं। पति के विरोध

के बावजूद वे अपनी पुस्तकें स्वयं प्रकाशित करवाने लगीं।

अपने लेखन की समाज सापेक्षता को स्पष्ट करते हुए वे लिखती हैं- “मेरा लेखन मेरी ज़रूरत है, मेरे समाज की ज़रूरत है। अपने सामाजिक, आर्थिक जीवन के कई तरह के शिकंजे के दर्द के बीच लेखन ने मुझे ऊर्जा दी है, पहचान दी है, मेरे जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया है। अब वह मेरी खुशी बन गया है, समाज-ऋण चुकाने का ज़रिया बन गया है।”<sup>11</sup>

## निष्कर्ष

रूढ़ियों के विरुद्ध जाकर उन्होंने अपनी दो बेटियों की शादियाँ बिना दहेज के की हैं। साहित्य सम्मेलनों के माध्यम से आंबेडकरी विचारधारा और दलित-चेतना के संदेश को अनेक देशों में पहुँचाया है। सुशीला टाकभौरे मनुवादी नज़रिए पर ही प्रहार नहीं करतीं, दलितों के दोषों एवं उनमें व्याप्त ऊँच-नीच की भावना पर भी टीकास्त्र छोड़ती हैं। उनका मानना है कि भंगी समाज का सुधार 'वाल्मीकि' की पूजा करने या गांधीवाद की माला जपने से संभव नहीं है। इसके लिए उन्हें आंबेडकर द्वारा बताए मार्ग शिक्षा, संघर्ष, एकता-पर चलना होगा।

## संदर्भ ग्रन्थ

1 दोहरा अभिशाप, कौशल्या बैसंजी, परमेश्वरी प्रकाशन, संस्करण २०१२, पृ. 47

2 वही, पृ. 54

3 वही, पृ. 116

4 वही, पृ. 106

5 शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2014, पृ. 16

6 वही, पृ. 300

7 वही, पृ. 262

8 वही, पृ. 51

9 वही, पृ. 222-2210 वही, पृ. 26111 वही, पृ. 270